

डॉ. कल्पना रानी
ऊना, हिमाचल प्रदेश

एक ख़त : तुम, संभाल लेती हो

मैं टूट जाता हूँ तो बिखर जाता हूँ
कई-कई टुकड़ों में बंट जाता हूँ
नहीं बढ़ पाता कदम दो कदम आगे
मुझे मेरा स्वाभिमान रोक लेता है
पर मैंने तुम्हें कभी टूटकर बिखरते नहीं देखा
कभी देखता हूँ कि इस बार पहले से ज्यादा
और भी मजबूत बन कर, पक्का इरादा
करके आई हो, नहीं रुकोगी अब की बार
मेरी नाकाम कोशिशें देखकर
ऐसा लगता है तुम मुस्कराती हो
झेंप जाता हूँ, ऐसा लगता है जैसे
गिराना चाहती हो मुझे मेरी ही नजर से
इतना अंतर क्यों ? एक होकर भी हम दो हैं
क्यों तुम मेरी दृष्टि से देख नहीं पाती
तुम्हें लगता है तुम आगे बढ़ रही हो
और मैंने देखा है जब भी तुम
आगे बढ़ी हो कदम दो कदम
तुम्हारे सब रिश्ते मीलों पीछे रह गए
तुम संभाल लेना चाहती हो सब कुछ
जैसे संभालती आई हो हमेशा से
जैसे संभालती आई हो हमेशा से-
खाने में नमक का स्वाद
चाय में इलायची की खुशबू
अपने आँचल में ममता
और... मेरे प्रेम के अवशेष
पर मैं महसूस करता हूँ
कि तुम्हारे इस सम्भालने में भी
बहुत कुछ बिखर रहा है
बहुत कुछ बिखर रहा है-
हमारे प्रेम की मधुर स्मृतियाँ
मेरे बच्चों का बचपन
और मेरे घर की रौनक
हाँ, मेरे प्यार की उजली सुबह भी
मेरी तुमसे प्रतियोगिता नहीं है
न ही रखना चाहता हूँ तुम्हें बांधकर
पर उन्मुक्त हो अगर तुम चलोगी अकेली
तो मेरा डरना स्वाभाविक-सा है
नहीं खोना चाहता तुम्हें
हाँ, मैं नहीं खोना चाहता तुम्हें
इसलिए रोकता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ
कि तुम मेरे लिए क्या हो ?
दूसरों के लिए.....तुम वो नहीं
न ही वो पढ़ सकते हैं तुम्हारा अन्तर्मन
मैं आगे बढ़कर थाम लेना चाहता हूँ
हाथ तुम्हारा पकड़, रोक लेना चाहता हूँ
ठीक उसी तरह जैसे तुम
मेरे जीवन में आई थीं
हुआ था एहसास पूर्णता का
बना दिया था मेरे मकान को तुमने घर
मेरे सपनों में उजाला भर कर
मेरे रिश्तों को उज्ज्वल दिया था कर
मैंने बस इतना चाहा था कि
तुम भी देख पाओ सपने जिन्हें
मैं कर पाऊँ पूरा--- और
तुम छू लो आसमान, पर
तुम्हारे लिए तारे मैं लाऊँ तोड़कर
मुझे तुमसे बस तुम्हारी
सिर्फ तुम्हारी अपेक्षा है
लौट चलो, वहीं
जहाँ आज भी संभालकर रखी हैं
स्मृतियाँ मैंने
कुछ पुराने एलबम, कुछ तस्वीरें
कुछ पन्ने मेरी डायरी के
और मेरा नितान्त.....अकेलापन
और उस अकेलेपन में भी मुझमें
मैं नहीं सिर्फ तुम हो.....तुम ही हो।

प्रतिउत्तर : मैं कहाँ संभाल पाती हूँ

धीरे-धीरे खुलता है, परत-दर-परत चेहरा
कई बार देखने के बाद
जो सभ्य है रह जाता है उसी लिबास में
जो योग्य नहीं है खुलने के सबके सामने
छुपा लिया जाता है बड़े यत्न से
सिर्फ तुम ही नहीं टूटते
मैं भी बंट जाती हूँ टुकड़ों में
टूटते तारों की तरह मेरे आसमान में
बस जमीं पर बिखरती नहीं हूँ टूटकर
पर मेरी चोट इतनी गहरी होती है
कि तुम देख नहीं पाए परत-दर-परत
उस आंतरिक चेतना तक पहुँच चुकी
उस वेदना की तह को
मेरे सुकोमल हृदय की उठती हूक को
मेरी कठोर वाणी के पीछे कंपकंपाते स्वर को
मेरी नीरस आँखों में बर्फ बन चुके पानी को
या फिर पत्थर बन चुकी इस देह को
मैं मुस्करा देती हूँ, कि हर बार
एक नया रूप देखती हूँ तुम्हारा
तुमने सिर्फ हम दोनों के फासलों को मापा है
तुमने सिर्फ हम दोनों के फासलों को मापा है-
और मैं मापती आई हूँ
मेरे वजूद से हर कदम मिटते मेरे निशान को
तुम्हारे आगे बढ़ते कदमों के पीछे छूटती मेरी दुआ
और रिश्तों को संभालती खुद को खोने वाली
एक स्त्री की पीड़ा को, जो सदैव
तुम्हारे कदम के साथ कदम मिलाने के भ्रम में
चलती रही सदा तुमसे दो कदम पीछे
फिर भी नहीं बन पाई वो सीता, सावित्री
न ही लड़ पाई कोई लड़ाई अपने स्वाभिमान की खातिर
अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पित कर भी
हमेशा उपेक्षा और उलाहनें, तुम्हारी अनगिनत शिकायतें
तो कभी चुभने वाली मेरे अस्तित्व पर कुदृष्टि गैरों की
उस पर सनन् तीर-सी सही है तुम्हारी शक से भरी नजर
जो मेरे पतिव्रत्य को क्षण भर में कर देती है अलग
मेरी आत्मा से, फिर भी मुस्कुरा देती हूँ क्योंकि
तुम्हें पसंद नहीं हैं मेरे माथे पर शिकन के निशान
जबकि मैं जानती हूँ कि अब
तुम्हें मेरी हँसी भी चोट पहुंचाती है
लौटना चाहती हूँ फिर से उसी मंदिर की देवी बन-
जहाँ मेरे आत्म तत्व को मैंने शेष छोड़ा है
बाकी सब मेरे अंदर से जोड़ – घटा कर
पर क्या तुम भी मिलोगे उतनी ही आत्मीयता से?
क्या अपने वजूद से मिटा पाओगे उस बाहरी परत को?
और खुल कर फिर से एक बार अपना असली चेहरा,
दिखा पाओगे? या पहन लोगे एक नया मुखौटा
कुछ वादे वफा नए करके जैसे करते आए हो हर बार
और फिर तोड़ा है मेरे सपनों का मंदिर... और फिर
खो गया बाकी सब.....हर बार सिर्फ मैं ही
सिर्फ मैं ही बची शेष.....तुम्हारे लिए